धवलाका गणितशास्त्र

(डा. अवधेश नारायण सिंह,
लखनऊ यूनीवर्सिटी, के लेखका अनुवाद)

यह विदित हो चुका है कि भारतवर्षमें गणित- अंकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदिका अध्ययन अति प्राचीन कालमें किया जाता था l इस बातका भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञोंने गणितशास्त्रमें ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी l यथार्थत: अर्वाचीन अंकगणित और बीजगणितके जन्मदाता वे ही थे l हमें यह सोचनेका अभ्यास हो गया है कि भारतवर्षकी विशाल जनसंख्यामेंसे केवल हिंदुओने ही गणितका अध्ययन किया, और उन्हें ही इस विषयमे रुचि थी, और भारतवर्षीय जनसंख्याके अन्य भागों, जैसे कि बौध्द व जैनोने, उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया l विद्वानोंके इस मतका कारण यह है कि अभी अभी तक बौध्द वा जैन गणितज्ञोंद्वारा लिखे गये कोई गणितशास्त्रके ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुए थे l किन्तु जैनियोंके आगमग्रन्थोंके अध्ययनसे प्रकट होता है कि गणितशास्त्रका जैनियोंमे भी खूब आदर था l यथार्थत: गणित और ज्योतिष विद्याका ज्ञान जैन मुनियोकी एक मुख्य साधना समझी जाती थी l

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियोंकी गणितशास्त्रकी एक शाखा दक्षिण भारतमें थी, और इस शाखाका कमसे कम एक ग्रन्थ, महावीराचार्य-कृत गणितसारसंग्रह, उस समयकी अन्य उपलब्ध कृतियोंकी अपेक्षा अनेक बातोंमे श्रेष्ठ है l महावीराचार्यकी रचना सन् ८५० की है l उनका यह ग्रन्थ सामान्य रुपरेखामें ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और अन्य हिन्दू गणितज्ञोंके ग्रन्थोंकेसमान होते हुए भी विशेष बातोंमे उनसे पूर्णत: भिन्न है l उदाहरणार्थ- गणितसारसंग्रहके प्रश्न (problems) प्राय: सभी दूसरे ग्रन्थोंकेप्रश्नोंसे भिन्न हैं l

वर्तमानकालमें उपलब्ध गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यके आधारपरसे हम यह कह सकते है कि गणिशास्त्रकी महत्वपूर्ण शाखाएं पाटलिपुत्र (पटना), मैसूर, मलवार और संभवत: बनारस, तक्षशिला और कुछ अन्य स्थानोंमें उन्नतिशील थी l जब तक आगे प्रमाण प्राप्त न हो, तब तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन शाखाओंमें परस्पर क्या संबंध था l

----

१ देखो-भगवती सूत्र, अभयदेव सूरिकी टीका सहित, म्हेसाणाकी आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित, १९१९, सूत्र ९० l जैकोबी कृत उत्तराध्यन सूत्रका अंग्रेजी अनुवाद, ऑक्सफोर्ड १८९५, अध्याय ७, ८, ३८.

फिर भी हमें पत्ता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंसे आये हुए ग्रन्थोंकी सामान्य रुपरेखा तो एकसी हैं, किन्तु विस्तारसंबंधी विशेष बातोंमें उनमें विभिन्नता है l इससे पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंमें आदान-प्रदानका संबंध था, छात्रगण और विद्वान एक शाखासे दूसरी शाखामें गमन करते थे, और एक स्थानमें किये गये अविष्कार शीघ्र ही भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विज्ञापित कर दिये जाते थे l

प्रतीत होता है कि बौध्द धर्म और जैन धर्मके प्रचारने विविध विज्ञानों और कलाओंके अध्ययनको उत्तेजना दी l सामान्यत: सभी भारतवर्षीय धार्मिक साहित्य,और मुख्यतया बौध्द व जैनसाहित्य, बडी बडी संख्याओंके उल्लेखोंसे परिपूर्ण है l बडी संख्याओंके प्रयोगने उन सख्याओंका लिखनेकेलिये सरल संकेत्तोंकी आवश्यकता उत्पन्न की, और उसीसे दाशमिक क्रम (The place value system of notation) का आविष्कार हुआ l अब यह बात निस्संशयरुपसे सिध्द हो चुकी है कि दाशमिक क्रमका आविष्कार भारतमें ईसवी सन्के प्रारंभ कालके लगभग हुआ था, जब कि बौध्दधर्म और जैनधर्म अपनी चरमोन्नति पर थे l यह नया अंक-क्रम बडा शक्तिशाली सिध्द हुआ, और इसीने गणिशास्त्रकी गतिप्रदान कर सुल्वसूत्रोंमें प्राप्त वेदकालीन प्रारंभिक गणितको विकासकी ओर बढाया, और वराहमिहिरके ग्रन्थोंमें प्राप्त पांचवी शताब्दीमें सुसम्पन्न गणितशास्त्रमें परिवर्तित कर दिया l

एक बडी महत्वपूर्ण बात, जो गणितके इतिहासकारोंकी दृष्टीमें नहीं आई, यह है कि यद्यपि हिन्दुओं बौद्धों और जैनियोंका सामान्य साहित्य ईसासे पूर्व तीसरी व चौथी शताब्दीसे लगाकर मध्यकालीन समय तक अविच्छिन्न है, क्योंकि प्रत्येक शताब्दीके ग्रन्थ उपलब्ध है, तथापि गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यमें विच्छेद है, यथार्थतः सन् ४९९ मे रचित आर्यभटीयसे पूर्वकी गणितशास्त्रसंबंधी रचना कदाचित् ही कोई हो । अपवादमें वख्शालि प्रति (Bakhsali-Manuscript) नामक वह अपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थ ही है जो संभवतः दूसरी या तीसरी शताब्दीकी रचना है । किन्तु इसकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिसे हमें उस कालके गणित- ज्ञानकी स्थितिके विषयमें कोई विस्तृत वृतान्त नहीं मिलता, क्योंकि यथार्थमें वह आर्यभट ब्रम्हगुप्त अथवा श्रीधर आदिके ग्रन्थोंके सदृश गणितशास्त्रकी पुस्तक नहीं है । वह कुछ चुने हुए गणितसंबंधी प्रश्नोंकी व्याख्या अथवा टिप्पणीसी है । इस हस्तलिखित प्रतिसे हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि दाशमिकक्रम और तत्संबंधी अकगणितकी मूल प्रक्रियायें उस समय अच्छी तरह विदित थी, और पीछेके गणितज्ञोंद्वारा उल्लिखित कुछ प्रकारके गणित प्रश्न (problems) भी ज्ञात थे ।

यह पूर्व ही बताया जा चुका है कि आर्यभटीयमें प्राप्त गणितशास्त्र विशेष उन्नत है, क्योंकि उसमें हमको निम्न लिखित विषयोंका उल्लेख मिलना है- वर्तमानकालीन प्राथमिक अंकगणितके सब भाग जिनमें अनुपात, विनिमय और व्याजके नियम भी सम्मिलित हैं, तथा सरल और वर्ग समीकरण, और सरल कुट्टक (indeterminate equations) की प्रक्रिया तकका बीजगणित भी है । अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या आर्यभटने अपना गणितज्ञान विदेशसे ग्रहण किया, अथवा जो भी कुछ सामग्री आर्यभटीयमें अन्तर्हित है वह सब भारतवर्षकी ही मौलिक सम्पत्ति है ? आर्यभट लिखते हैं च्ब्रम्ह, पृथ्वी, चंद्र, बुध, शूक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रोंको नमस्कार करके आर्यभट उस ज्ञानका वर्णन करता है जिसका कि यहाँ कुसुमपुरमें आदर हैं[१] । छ इससे पता चलता है कि उसने विदेशसे कुछ ग्रहण नहीं किया । दूसरे देशोंके गणितशास्त्रके इतिहासके अध्ययनसे भी यही अनुमान होता है, क्योंकि आर्यभटीय गणित संसारके किसी भी देशके तत्कालिन गणितसे बहुत आगे बढा हुआ था । विदेशसे ग्रहण करनेकी संभावनाको इस प्रकार दूर कर देने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि आर्यभटसे पूर्वकालीन

गणितशास्त्रसंबंधी कोई ग्रन्थ उपलब्ध क्यो नहीं है ? इस शंकाका निवारण सरल है। दाशमिकक्रमका आविष्कार ईसवी सन्‌के प्रारंभ कालके लगभग किसी समय हुआ था। इसे सामान्य प्रचारमें आनेके लिये चार पांच शताब्दियां लग गई होगी। दाशमिकक्रमका प्रयोग करनेवाला आर्यभटका ग्रन्थ ही सर्वप्रथम अच्छा ग्रन्थ प्रतीत होता है। आर्यभटके ग्रन्थसे पूर्वके ग्रन्थोंमे या तो पुरानी संख्यापध्दतिका प्रयोग था, अथवा, वे समयकी कसौटी पर ठीक उतरने लायक अच्छे नहीं थे। गणितकी दृष्टीसे आर्यभटकी विस्तृत ख्यातिका कारण, मेरे मतानुसार, बहुतायतसे यही था कि उन्होंने ही सर्वप्रथम एक अच्छा ग्रन्थ रचा, जिसमें दाशमिकक्रमका प्रयोग किया गया था। आर्यभटके ही कारण पुरानी पुस्तके अप्रचलित और विलीन हो गई। इससे साफ पता चल जाता है कि सन् ४९९ के पश्चात् लिखी हुई तो हमें इतनी पुस्तकें मिलती हैं, किन्तु उसके पूर्वके कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार सन् ५०० ईसवीके पूर्वके भारतीय गणितशास्त्रके विकास और उन्नतिका चित्रण करनेके लिये वास्तवमें कोई साधन हमारे पास नहीं है। ऐसी अवस्थामें आर्यभटसे पूर्वके भारतीय गणितज्ञानका बोध करानेवाले ग्रन्थोकी खोज करना एक विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य हो जाता है। गणितशास्त्रसंबंधी ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेके कारण सन् ५०० के पूर्वकालीन भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासका पुन: निर्माण करनेके लिये हमें हिदुओं, बौद्धों और जैनियोंके साहित्यकी, और विशेषत: धार्मिक साहित्यकी, छानबीन करनी पडती है। अनेक पुराणोंमें हमें ऐसे भी खंड मिलते हैं जिनमें गणितशास्त्र और ज्योतिषविद्याका वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार जैनियोंके अधिकांश आगमग्रन्थोंमें भी गणितशास्त्र या ज्योतिषविद्याकी कुछ न कुछ सामग्री मिलती है। यही सामग्री भारतीय परम्परागत गणितकी द्योतक है, और वह इस ग्रन्थसे जिसमें वह अन्तर्भूत है, प्राय: तीन चार शताब्दियां पुरानी होती है। अत: यदि हम सन् ४०० से ८०० तककी किसी धार्मिक या दर्शनिक कृतिकी परीक्षा करे तो उसका गणितशास्त्रीय विवरण ईसवीके प्रारंभसे सन् ४०० तकका माना जा सकता है।

उपर्युक्त निरुपणके प्रकाशमे ही हम इस नौवीं शताब्दीके प्रारंभकी रचना षट्खण्डागमकी टीका धवलाकी खोजको अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हैं । श्रीयुत हीरालाल जैनने इस ग्रन्थका सम्पादन और प्रकाशन करके विद्वानोंको स्थायीरुपसे कृतज्ञतका ऋणी बना लिया है

----

१ ब्रम्हकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणगणान्नमस्कृत्य ।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥ आर्यभटीय. २,१.

ब्रम्हभूमिनक्षत्रगणान्नमस्कृत्य कुसुमपुरे कुसुमपुराख्येऽस्मिन्देशे अभ्यर्चितं ज्ञानं कुसुमपुरवासिभिः पूजितं ग्रहगतिज्ञानसाधनभूतं तन्त्रमार्यभटो निगदति । (परमेश्वराचार्यकृत टीका)

गणितशास्त्रकी जैनशाखा

सन् १९१२ मे रंगाचार्यद्वारा गणितसारसंग्रहकी खोज और प्रकाशनके समयसे विद्वानोंको आभास होने लगा है कि गणितशास्त्रकी ऐसी भी एक शाखा रही है जो कि पूर्णतः जैन विद्वानोंद्वारा चलाई जाती थी । हालहीमें जैन आगमके कुछ ग्रन्थोंके अध्ययनसे जैन गणितज्ञ और गणितग्रन्थोंसम्बन्धी उल्लेखोंका पता चला है[२] । जैनियोंका धार्मिक साहित्य चार भागोंमें विभाजित है जो अनुयोग, (जैनधर्मके) तत्त्वोंका स्पष्टीकरण, कहलाते हैं । इनमेंसे एकका नाम करणानुयोग या गणितानुयोग, अर्थात् गणितशास्त्रसंबन्धी तत्त्वोंका स्पष्टीकरण, है । इसीसे पता चलता है कि जैनधर्म और जैनदर्शनमें गणितशास्त्रको कितना उच्च पद दिया गया है ।

यद्यपि अनेक जैन गणितज्ञोंके नाम ज्ञात है, परंतु उनकी कृतियां लुप्त हो गई हैं । उनमें सबसे प्राचीन भद्रबाहु हैं जो कि ईसासे २७८ वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधारे । वे ज्योतिष विद्या दो ग्रन्थोंके लेखक माने जाते हैं (१) सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीका; और (२) भद्रबाहवी संहिता नामक एक मौलिक ग्रन्थ । मलयगिरी (लगभग ११५० ई.) ने अपनी सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीकामें इनका उल्लेख किया है,

और भट्टोत्पल[3] (९६५) ने उनके ग्रन्थावतरण दिये हैं। सिद्धसेन नामक एक दूसरे ज्योतिषीके ग्रन्थावतर वराहमिहिर (५०५) और भट्टोत्पल द्वारा दिये गये हैं।

----

१ देखो --- रंगाचार्य द्वारा सम्पादित गणितसारसंग्रहकी प्रस्तावना, डी. ई. स्मिथद्वारा लिखित, मद्रास, १९१२.

२ बी दत्त: गणितशास्त्रीय जैन (शाखा, बुलेटीन कलकत्ता गणितसोसायटी, जिल्द २१ (१९१९), पृष्ठ ११५ से १४५.

३ बृहत्संहिता, एस द्विवेदीब्रारा सम्पादित, बनारस, १८९५, पृ. २२६.

अर्धमागधी और प्राकृत भाषामें लिखे हुए गणितसम्बन्धी उल्लेख अनेक ग्रन्थोमें पाये जाते हैं। धवलामें इसप्रकारके बहुसंख्याक अवतरण विद्यमान हैं। इन अवतरणोपर यथास्थान विचार किया जायेगा। किन्तु यहाँ बात उल्लेखनीय है कि वे अवतरण नि:संशयरुपसे सिद्ध करते हैं कि जैन विद्वानोंद्वारा लिखे गये गणितग्रन्थ थे जो कि अब लुप्त हो गये हैं[1]। क्षेत्र समास और करणभावनाके नामसे जैन विद्वानोद्वारा लिखित ग्रन्थ गणितशास्त्रसम्बन्धी ही थे। पर अब हमें ऐसे कोई ग्रन्थ प्राप्य नहीं हैं। हमारा जैन गणितशास्त्रसम्बन्धी अत्यन्त खंडित ज्ञान स्थानांग सूत्र, उमास्वातिकृत तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, सूर्यप्रज्ञप्ति, अनुयोगद्वारसूत्र, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार आदि गणितेतर ग्रन्थोंसे संकलित है[6] अब इन ग्रन्थोमे धवलाका नाम भी जोडा जा सकता है।

धवलाका महत्व

धवला नौवीं सदीके प्रारंभमे वीरसेन द्वारा लिखी गई थी। वीरसेन तत्तज्ञानी और धार्मिक दिव्यपुरुष थे। वे वस्तुत: गणितज्ञ नहीं थे। अत: जो गणितशास्त्रीयसामग्री धवलाके अन्तर्गत है, वह उनसे पूर्ववर्ती लेखकोंकी कृति कही जा सकती है, और मुख्यतया पूर्वगत टीकाकारोंकी, जिनमेंसे पांचका इन्द्रनन्दीने अपने श्रुतावतारमें उल्लेख किया है। ये टीकाकार कुंदकुंद,

शामकुंद, तुंबुलूर, समन्तभद्र और बप्पदेव थे, जिनमेंसे प्रथम लगभग सन् २०० के और अन्तिम सन् ६०० के लगभग हुए । अत: धवलाकी अधिकांश गणितशास्त्रीयसामग्री सन् २०० से ६०० तकके बीचके समयकी मानी जा सकती है । इस प्रकार भारतवर्षीय गणितशास्त्रके इतिहासकारोंके लिये धवला प्रथम श्रेणीका महत्वपूर्ण ग्रन्थ हो जाता है, क्योंकि उसमे हमें भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासके सबसे अधिक अंधकारपूर्ण समय, अर्थात् पांचवी शताब्दीसे पूर्वकी बातें मिलती हैं । विशेष अध्ययनसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि धवलाकी गणितशास्त्रीय सामग्री सन् ५०० से पूर्वकी है । उदाहरणार्थ- धवलामें वर्णित अनेक प्रक्रियायें किसी भी अन्य ज्ञात ग्रन्थमें नहीं पाई जाती, तथा इसमें कुछ ऐसी स्थलताका आभास भी है जिसकी झलक पश्चात्के भारतीय गणितशास्त्रसे परिचित विद्वानोंको सरलतासे मिल सकती है । धवलाके गणितभागमें वह परिपूर्णता है परिष्कार नहीं है जो आर्यभट्ट और उसके पश्वात्के ग्रन्थोंमे है ।

धवलान्तर्गत गणितशास्त्र

संख्याएं और संकेत--- धवलाकार दाशमिकक्रमसे पूर्णत: परिचित हैं । इसके प्रमाण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं । हम यहाँ धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंसे ली गई संख्याओंको व्यक्त करनेकी कुछ पद्धतियोंको उपस्थित करते है ---

----

१ शीलाकने सूत्रकृतागसूत्र,स्मयाध्ययन अनुयोगद्वार, श्लोक २८ पर अपनी टीकामे मंगसंबधी (regarding permutation and combination) तीन नियम उद्धत किये है । ये नियम किसी जैन गणित ग्रथमेसे लिये गये जान पडते है ।

----

(१) ७९९९९९९८ को ऐसी संख्या कहा है कि जिसके आदिमें ७, अन्तमें ८ और मध्यमें छह वार ९ की पुनरावृत्ति है[१] ।

(२) ४६६६६६६६४ व्यक्त किया गया है-- चौसठ, छह सौ, छ्यासठ हजार, छ्यासठ लाख, और चार करोड[२] ।

(३) २२७९९४९८ व्यक्त किया गया है-- दो करोड, सत्ताइस, निन्यान्नवे हजार,चारसौ और अन्ठान्नवे[३] ।

इनमेंसे (१) में जिस पद्धतिका उपयोग किया है वह जैन साहित्यमें अन्य स्थानोम भी पायी जाती है, और गणितसारसंग्रहमें[४] भी कुछ स्थानोंमें है । उससे दाशमिकक्रमका सुपरिचय सिद्ध होता है । (२) में छोटी संख्याए पहले व्यक्त की गई है । यह संस्कृत साहित्यमें प्रचलित साधारण रीतिके अनुसार नहीं है । उसी प्रकार यहाँ संकेत्त-क्रम सौ है, कि दश जो कि साधारणत: संस्कृत साहित्यमें पाया जाता है[५] । किन्तु पाली और प्राकृतमे सौ का क्रम ही प्राय: उपयोगमें लाया गया है । (३) मे सबसे बडी संख्या पहले व्यक्त की गई है । अवरतरण (२) और (३) स्पष्टत: भिन्न स्थानोंसे लिये गये हैं ।

बडी संख्यायें --- यह सुविदित है कि जैन साहित्यमें बडी संख्यायें बहुतायतसे उपयोगमें आई हैं । धवलामें भी अनेक तरहकी जीवराशियों (द्रव्यप्रमाण) आदि पर तर्क वितर्क है । निश्चितरुपसे लिखी गई सबसे बडी संख्या पर्याप्त मनुष्योंकी है । यह संख्या धवलामें६ दो के छठे वर्ग और दो के सातवें वर्गके बीचकी, अथवा और भी निश्चित, कोटि-कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटिके बीचकी कही गई है । याने ---

$_{२}२^{६}$ और $_{२}२^{७}$ के बीचकी । अथवा, और अधिक नियत- (१,००,००,०००)३ और (१,००,००,०००)४ के बीचकी । अथवा, सर्वथा निश्चित- $_{२}२^{५}$ x $_{२}२^{६}$ । इन जीवोंकी संख्या अन्य मतानुसार ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ है ।

----

१. ध. भाग ३, पृष्ठ ९८, गाथा ५१ । देखो गोम्मटसार, जीवकांड पृष्ठ ६३३.

२. ध. भाग ३, पृष्ठ ९९, गाथा ५२ ।   ३. ध. भाग ३. पृ. १००, गाथा ५३.
४. देखो-गणितसारसंग्रह १, २७ और भी देखो दत्त और सिंहका हिन्दू गणितशास्त्रका इतिहास, जिल्द १, लाहोर १९३५, पृ १६   ५. दत्त और सिंह, पूर्ववत् पृ. १४. ६ ध. भाग ३, पृ २५३ ७ गोम्मटसार,जीवकांड, (से. बु. जै. सीरीज) पृ. १०४

यह संख्या उन्तीस अंक ग्रहण करती है । इसमें भी उतने ही स्थान हैं जितने कि (१,००,००,०००)^{४} में, परन्तु है वह उससे बडी संख्या । यह बात धवलाकारको ज्ञात है और उन्होंने मनुष्यक्षेत्रका क्षेत्रफल निकालकर यह सिद्ध किया है कि उक्त संख्याके मनुष्य मनुष्यक्षेत्रमे नही समा सकते, और इसलिये उस संख्यावाला मत ठीक नही है ।

मौलिक प्रक्रियायें

धवलामें जोड, बाकी, गुणा, भाग, वर्गमूल और घनमूल निकालना, तथा संख्याओंका घात निकालना (The raising of numbers to given powers) आदि मौलिक प्रक्रियाओंका कथन उपलब्ध है । ये क्रियाएं पूर्णांक और भिन्न, दोनोंके संबंधमे कही गई हैं । धवलामें वर्णित घातांकका सिद्धांत (theory of indices) दूसरे गणित ग्रन्थोसे कुछ कुछ भिन्न है । निश्चयत: यह सिद्धान्त प्राथमिक है, और सन् ५०० से पूर्वका है । इस सिद्धान्तसम्बंधी मौलिक विचार निम्नलिखित प्रक्रियाओंके आधारपर प्रतीत होते हैं:--- (१) वर्ग, (२) घन, (३) उत्तरोत्तर वर्ग, (४) उत्तरोत्तर घन (५) किसी संख्याका संख्यातुल्य घात निकालना (The raising of numbers to their own power), (६) वर्गमूल, (७) घनमूल, (८) उत्तरोत्तर वर्गमूल, (९) उत्तरोत्तर घनमूल, आदि[८] अन्य सब घातांक इन्हीं रुपोंमें प्रगट किये गये हैं ।

उदाहरणार्थ--- अ ३/२ को अ केघनका प्रथम वर्गमूल कहा है । अ^{९} को अ का घनका घन कहा है । अ^{६} को
अ के घनका वर्ग, या वर्गका घन कहा है, इत्यादि[१] । उत्तरोत्तर वर्ग और घनमूल नीचे लिखे अनुसार हैं -

अ का प्रथम वर्ग याने (अ) २ = अ २

,, द्वितीय वर्ग याने (अ२) २ = अ ४ = अ $_{२}$२^{६}

,, तृतीय वर्ग याने अ २^{३}

,, न वर्ग ,, अ$^{२ न}$

उसी प्रकार --- अ का प्रथम वर्गमूल याने अ १/२

अ का द्वितीय ,, ,, अ१/२ ^{२}

,, ,, तृतीय ,, ,, अ१/२ ^{३}

२

,, न ,, ,, अ १/२ ^{न}

----

१ धवला, भाग ३ पृष्ठ ५३

वर्गित---संवर्गित

परिभाषिक शब्द वर्गित-संवर्गितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

उदाहरणार्थ --- न न न का वर्गितसंवर्गित रुप है।

इस सम्बन्धमें धवलामें विरलन-देय ‘फैलाना और देना’ नामक प्रक्रियाका उल्लेख आया है। किसी संख्याका ‘विरलन’ करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एकएकमे अलग करना है। जैसे, न केविरलनका अर्थ है ---

१११११...... न वार

'देय' अर्थ है उपर्युक्त अंकोमे प्रत्येक स्थान पर एककी जगह न (विवक्षित संख्या) को रख देना । फिर उस विरलन-देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है । जैसे, न का वर्गित-संवर्गित $\text{न}^{\text{न}}$ ।

विरलन-देयकी एकवार पुन: प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् $\text{न}^{\text{न}}$ को लेकर वही विधान फिर करनेसे,

$$\text{न}^{\text{न}}$$

द्वितीय वर्गितसंवर्गित $(\text{न}^{\text{न}})$ प्राप्त होता है । इसी विधानको पुन: एकवार करनेसे न का तृतीय वर्गित-संवर्गित

$$\text{न}^{\text{न}}$$

$\text{न}^{\text{न}}$ $(\text{न}^{\text{न}})$ प्राप्त होता है ।

$(\text{न}^{\text{न}})$

धवलामें उक्त प्रक्रियाका प्रयोग तीन वारसे अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है । किन्तु तृतीय वर्गितसंवर्गितका उल्लेख अनेकवार१ बडी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके सम्बंधमें किया गया है । इस प्रक्रियासे कितनी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्गितसंवर्गित रुप $२५६^{२५६}$ हो जाता है ।

घातांक सिद्धान्त

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि धवलाकार घातांक सिद्धान्तसे पूर्णत: परिचित थे । जैसे ---

(१) $\text{अ}^{\text{म}}\ \text{अ}^{\text{न}} = \text{अ}^{\text{म} + \text{न}}$

(२) $\text{अ}^{\text{म}}/\text{अ}^{\text{न}} = \text{अ}^{\text{म} - \text{न}}$

$$(३)\ (\text{अ}^{\text{म}})^{\text{न}} = \text{अ}^{\text{मन}}$$

----

१ धवला, भाग ३, पृ २० आदि.

उक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसंबंधी उदाहरण धवलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रकारका है[1]- कहा गया है कि २ के ७ वे वर्गमें २ के छठवें वर्गका भाग देनेसे २ का छठवां वर्ग लब्ध आता है। अर्थात्-

$${}_{२}२^{७} / {}_{२}२^{६} = {}_{२}२^{६}$$

जब दाशमिकक्रमका ज्ञान नहीं हो पाया तब द्विगुणक्रम और अर्धक्रमकी प्रक्रियाएं (The operations of duplation and mediation) महत्वपूर्ण समझी जाती थी। भारतीय गणितशास्त्रके ग्रन्थोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिन्ह नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको मिश्र और यूनानके निवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अंकगणितसंबंधी ग्रन्थोंमें वे तदनुसार स्वीकार की जाती थी। धवलामें इन प्रक्रियाओंके चिन्ह मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके उत्तरोत्तर वर्गीकरणका विचार निश्चयत: द्विगुणक्रमकी प्रक्रियासे ही परिस्फुटित हुआ होगा, और यह द्विगुणक्रमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचारसे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। उसी प्रकार अर्धक्रम पद्धतिका भी पत्ता चलता है । धवलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधारवाले लघुरिक्थ सिद्धान्तमें साधारणीकृत पाते हैं।

लघुरिक्थ (Logarithm)

धवलामे निम्न पारिभाषिक शब्दोके लक्षण पाये जाते है २ ____

(१) अर्धच्छेद___ जितनी वार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी आधी की जा सकता है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते है जैसे - २ म के अर्धच्छेद = म

अर्धच्छेदका संकेत अछे मानकर हम इसे आधुनिक पद्धतिमे इस प्रकार रख सकते है _ क का अछे (या अछे क) = लरि का यहाँ लघुरिक्थका आधार २ है।

(२) वर्गशलाका__ किसी संख्याके अर्द्धच्छेदोंकेक्र उस संख्याकी वर्गशलाका होती है। जैसे _ क की वर्गशलाका = वश क = लरि लरि का यहाँ लघुरिक्थका आधार २ है।

(३) त्रिकच्छेद [३]____जितने वार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जाती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते है। जैसे _ क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = लरि ३ क। यहाँ लघुरिक्थका आधार ३ है। १ धवला भाग ३, पृष्ठ.२५३ आदि. २. धवला भाग ३, पृ. २१ आदि. ३. धवला भाग ३, पृ. ५६.

(४) चतुर्थच्छेद [१]____जितने वार एक संख्या उत्तरोतर ४ से विभाजित की जा सकती है, उतने संख्यासे चतुर्थच्छेद होते है। जैसे _ क के चतुर्थच्छेंद = चछे क = लरि ४ क। यहाँ लघुरिक्थका आधार ४ है।

धवलामे लघुरिक्थसंबंधी निम्न परिणामोंका उपयोग किया गया है ___

१. [२] लरि (म/न) = लरि म _ लरि न

२. लरि (म.न) = लरि म + लरि न

३. [३] २ लरि म = म। यहाँ लघुरिक्थका आधार २ है।

४. [४] लरि (क क)२ = २ क लरि क

५. [५] लरि लरि (क/क)२ = लरि क +१+लरि लरि क,

(वाइ ओर) =लरि (२ क लरि क)

= लरि क + लरि २ + लरि लरि क

= लरि क + १+ लरि लरि क।

चूकि लरि २= १, जब कि आधार २ है।

क

क

६. { क } = क क

[६] लरि क क लरि क

७. मानलो अ एक संख्या है, तो---

अ का प्रथम वर्गित संवर्गित = $अ^{अ}$ ब (मानलो)

,, द्वितीय ,, = $ब^{ब}$ = भ ,,

,, तृतीय ,, = $भ^{भ}$ = म ,,

धवलामे निम्न परिणाम दिये गये हैं[७] ---

(क) लरि ब = अ लरि अ

(ख) लरि लरि ब = लरि अ + लरि लरि अ

(ग) लरि भ = ब लरि ब

----

१ धवला, भाग ३, पृ. ५६. २ धवला, भाग ३, पृ. ६० ३ धवला, भाग ३, पृ. ५५. ४. धवला, भाग ३, पृ. २१ आदि. ५. पूर्ववत्. ६. पूर्ववत । यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ग्रन्थमें ये लघुरिक्थ पूर्णाकों तक ही परिमित नहीं है । संख्या क कोई भी संख्या हो सकती है । $क^{क}$ प्रथम वर्गितसंवर्गित राशि और $(क^{क})^{कक}$ द्वितीय वर्गित संवर्गित राशि है । ७. धवला, भाग ३, पृ. २१. २४.

(घ) लरि लरि भ = लरि ब + लरि लरि ब

= लरि अ + लरि लरि अ + अ लरि अ

(ङ) लरि म = भ लरि भ

(च) लरि लरि म = लरि भ + लरि लरि भ । इत्यादि

(८) १ लरि लरि म< ब २

इस असाम्यतासे निम्न असाम्यता आती है---

ब लरि ब + लरि ब + लरि लरि ब < $ब^{२}$

भिन्न --- अंकगणितमें भिन्नोंकी मौलिक प्रक्रियाओं, जिनका ज्ञान धवलामें ग्रहण कर लिया गया है, के अतिरिक्त यहाँ हम भिन्नसंबंधी अनेक ऐसे रोचक सूत्र पाते हैं जो अन्य किसी गणितसंबंधी ज्ञात ग्रन्थमें नहीं मिलते । इनमें निम्न लिखित उल्लेखनीय है ---

(१) २ $\frac{\text{न}^{2}}{\text{न} \pm (\text{न}/\text{प})} = \text{न} + \frac{\text{न}}{\text{प} \pm 1}$

(२)३ मानलो कि किसी एक संख्या म में द, द’ ऐसे दो भाजकों का भाग दिया गया और उनके क्रमशः क और क’ ये दो लब्ध (या भिन्न) उत्पन्न हुए । निम्न लिखित सूत्रमें म के द + द’ से भाग देने का परिणाम दिया गया है ---

$$\frac{\text{म}}{\text{द} \pm \text{द}'} = \frac{\text{क}'}{(\text{क}'/\text{क}) \pm 1}$$

अथवा $= \frac{\text{क}}{1 \pm (\text{क}/\text{क}')}$

(३) ४ यदि $\frac{\text{म}}{\text{द}} = \text{क}$, और $\frac{\text{म}'}{\text{द}} = \text{क}'$, तो --- द (क-क’) + म’ = म

(४) ५ यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, तो- $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \frac{\text{ब}}{\text{न}}} = \text{क} - \frac{\text{क}}{\text{न}+1}$

----

१ धवला, भाग ३, पृ.२४.   २. धवला, भाग ३, पृ. ४६.

३ धवला, भाग ३, पृ ४६.   ४. धवला, भाग ३, पृ. ४७, गाथा २७.

५ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४.

और अ = क + क

ब-ब न-१

न

(५) १ यदि अ = क, तो - अ =क- क

ब ब+स ब + १

स

और अ = क + क

ब-स ब - १

स

(६) २ यदि अ = क, और अ = क + स, तो-

ब ब’

ब = ब - ब

क +१

स

और यदि अ = क - स, तो --- ब’ = ब + ब

ब क - १

स

(७)३ यदि अ - क, और अ दूसरा भिन्न है, तो---

ब ब’

अ - अ = क (ब’-ब)

ब ब’ ब’

(८) ४ यदि अ = क, और अ = क - स, तो --- ख = ब स

ब ब+ख क-स

(९) ५ यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब-ख}} = \text{क} + \text{स}$, तो-$\text{ख} = \frac{\text{ब स}}{\text{क+ स}}$

(१०)६ यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब+स}} = \text{क}'$, तो-$\text{क}' = \text{क-} \frac{\text{क स}}{\text{ब+स}}$

----

१ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४.   २. भाग ३, पृ. ४६, गाथा २५.

३ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २८.   ४. भाग ३, पृ. ४८ गाथा २९.

५ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३०.   ६. भाग ३, पृ. ४९ गाथा ३१.

----

(११)१ यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब-स}} = \text{क}'$, तो-$\text{क}' = \text{क} + \frac{\text{क स}}{\text{ब-स}}$

ये सब परिणाम धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंमें पाये जाते हैं। वे किसी भी गणितसंबंधी ज्ञात ग्रन्थमें नहीं मिलते। ये अवतरण अर्धमागधी अथवा प्राकृत ग्रन्थोंके है। अनुमान यही होता है कि वे सब किन्ही गणितसंबंधी जैन ग्रन्थोंसे, अथवा पूर्ववर्ती टीकाओंसे लिये गये हैं। वे अंकगणित किसी सारभूत प्रक्रियाका निरुपण नहीं करते। वे उस कालके स्मारकावशेष है जब कि भाग एक कठिन और श्रमसाध्य विधान समझा जाता था। ये नियम निश्चयत: उस काल के है जब कि दाशमिक-क्रमका अंकगणितकी प्रक्रियाओंमे उपयोग सुप्रचलित नहीं हुआ था।

त्रैराशिक --- त्रैराशिक क्रियाका धवलामें अनेक स्थानो पर उल्लेख और उपयोग किया गया है[२]। इस प्रक्रियासंबंधी पारिभाषिक शब्द हैं - फल, इच्छा और प्रमाण - ठीक वही जो ज्ञात ग्रन्थोंमें मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि त्रैराशिक क्रियाका ज्ञान और व्यवहार भारतवर्षमे दाशमिक क्रमके आविष्कारसे पूर्व भी वर्तमान था।

अनन्त

बडी संख्याओंका प्रयोग --- ‘अनन्त’ शब्दका विविध अर्थोसे प्रयोग सभी प्राचीन जातियोके साहित्यमे पाया जाता है। किन्तु उसकी ठीक परिभाषा और समझदारी बहुत पीछे आई। यह स्वाभाविक ही है कि अनन्तकी ठीक परिभाषा उन्ही लोगोद्वारा विकसित हुई जो बडी संख्याओाक प्रयोग करते थे, या अपने दर्शनशास्त्रमे ऐसी संख्याओकेअभ्यस्त थे। निम्न विवेचनसे यह प्रकट हो जायगा कि भारतवर्षमे जैन दार्शनिक अनन्तसे संबंध रखनेवाली विविध भावनाओंको श्रेणीबद्ध करने तथा गणनासंबंधी अनन्तकी ठीक परिभाषा निकालनेमे सफल हुए।

बडी संख्याओंको व्यक्त करनेकेलिये उचित संकेत्तोका तथा अनन्तकी कल्पनाका विकास तभी होता है जब निगूढ तर्क और विचार एक विशेष उच्च श्रेणीपर पहुच जाते है। यूरोपमे आर्किमिडीजने समुद्र तटकी रेतेके कणोके प्रमाणके अंदाज लगानेका प्रयत्न किया था और यूनानके दार्शनिकोने अनन्त एवं सीमा (limit) के विषयमे विचार किया था। किन्तु उनके पास बडी संख्याओको व्यक्त करनेके योग्य संकेत्त नही थे। भारतवर्षमे हिन्दू,जैन और बौद्ध दार्शनिकोंने बहुत बडी संख्याओका प्रयोग किया और उस कार्यकेलिये उन्होने उचित संकेत्तोका भी आविष्कार किया। विशेषत: जैनियोने लोकभरकेसमस्त जीवो, काल-प्रदेशो और क्षेत्र अथवा आकाश-प्रदेशो आदिकेप्रमाणका निरुपण करनेका प्रयत्न किया है।

बडी संख्याये व्यक्त करनेकेतीन प्रकार उपयोगमे लाये गये ---

(१) दाशमिक-क्रम (place-value notation) --- जिसमे दशमानका उपयोग किया गया। इस संबंधमे यह बात उल्लेखनीय है कि दशमानकेम आधारपर १०/१४० जैसी बडी संख्याओंको व्यक्त करनेवाले नाम कल्पित किये गये।

(२) घातांक नियम (Law of indices वर्ग संवर्ग) का उपयोग बडी संख्याओको सूक्ष्मतासे व्यक्त करनेकेलिये किया गया। जैसे ---

(अ) $२^{२} = ४$

(ब) $(२^{२})\ २^{२} = ४^{४} = २५६$

(स) $\{ (२^{२})२^{२} \} \{ (२^{२})२^{२} \} = २५६^{२५६}$

जिसको २ का तृतीय वर्गित-सवर्गित कहा है। यह संख्या समस्त विश्व (universe) के विद्युत्कणो (protons electrons) की संख्यासे बडी है।

(३) लघुरिक्थ (अर्धच्छेद) अथवा लघुरिक्थके लधुरिक्थ (अर्धच्छेदशलाका) का उपयोग बडी संख्याओके विचारको छोटी संख्याओंके विचारमे उतारने लिये किया गया। जैसे ---

(अ) लरि$_{२}$ २^{२} = २

(ब) लरि$_{२}$ लरि$_{२}$ ४^{४} =३

(स) लरि$_{२}$ लरि$_{२}$ २५६^{२५६} =११

इसमे कोई आश्चर्य नही कि आज भी संख्योओको व्यक्त करनेके लिये हम उपर्युक्त तीन प्रकारोमेसे किसी एक प्रकारका उपयोग करते है। दाशमिकक्रम समस्त देशोंकी साधारण सम्पत्ति बन गई है। जहा बडी संख्याओका गणित करना पडता है, वहा लघुरिक्थोंका उपयोग किया जाता है। आधुनिक पदार्थविज्ञाने परिणामो (magnitudes) को व्यक्त करनेके लिये घातांक नियमोका उपयोग सर्वसाधारण है। १ बडी संख्याओ तथा संख्या-नामोके संबंधमे विशेष जाननेके लिये देखिये दत्त और सिंह कृत हिन्दू गणितशास्त्रका इतिहास (History of Hindu Mathematic), मोतीलाल बनरसीदास, लाहौर, द्वारा प्रकाशित, भाग १, पृ ११ आदि. उदाहरणार्थ--- विश्वभरके विद्युतकणोकी[१] गणना करके उसकी व्यक्ति इस प्रकार की गई है --- १३६. २ ^{२५६} तथा, रुढ संख्याओके विकलन (distribution of primes) को सूचित करनेवाली स्क्यूज संख्या (skewes number) निम्न प्रकारसे व्यक्त की जाती है -

$$१०^{१०^{१०^{३४}}}$$

संख्याओंको व्यक्त करनेवाले उपर्युक्कत समस्त प्रकारोका उपयोग धवलामे किया गया है। इससे स्पष्ट है कि भारतवर्षमे उन प्रकारोका ज्ञान सातवी शतब्दिसे पूर्व ही सर्व-साधारण हो गया था।

अनन्तका वर्गीकरण

धवलामे अनन्तका वर्गीकरण पाया जाता है। साहित्यमे अनन्त शब्दका उपयोग अनेक अर्थोमे हूआ है। जैन वर्गीकरणमे उन सबका ध्यान रखा गया है जैन वर्गीकरणके अनुसार अनन्तके ग्यारह प्रकार है। जैसे ---

(१) नामानन्त [२] ____ नामका अनन्त। किसी भी वस्तु-समुदायके यथार्थत: अनन्त होने या न होनेका विचार किये विना ही केवल उसका बहुत्व प्रगट करनेके लिये साधारण बोलचालमे अथवा अबोध मनुष्यो द्वारा या उनके लिय, अथवा साहित्यमे, उसे अनन्त कह दिया जाता है। ऐसी अवस्थामे `अनन्त` शब्दका अर्थ नाममात्रका अनन्त है। इसे ही नामानन्त कहते है।

१ संख्या १३६.२/२५६ को दाशमिक-क्रमसे व्यक्त करने पर जो प्रकट होता है वह इस प्रकार है-

१५,७४७,७२४,१३६,२७५,००२,५७७,६०५,६५३,९६१,१८१,५५५,४६८,०४४,७१७,९१४,५७२,११६,७०९,३३६,२३१,४२५,०७६,१८५,६३१,०३१,२९६,

इससे देखा जा सकता है कि २ का तृतीय वर्गित-सवर्गित अर्थात $२५६^{२५६}$ विश्वभरके समस्त विद्युत कणोंकी संख्यासे अधिक होता है। यदि हम समस्त विश्वको एक शतरंजका फलक मान ले और विद्युतकणोकी उसकी गोटिया, और दो विद्युतकणोकी किसी भी परिवृत्तिको इस विश्वके खेलकी एक `चाल` मान ले, तो समस्त चालो की संख्या---

$$१०^{१०^{१०^{३४}}}$$ होगी।

यह संख्या रुढ संख्याओ (primes) के विभाग (distribution) से भी संबंध रखती है। २ जीवाजीवमिस्सदव्वस्स कारणणिरवेक्खा सण्णा अनंता। धवला ३, पृ ११ .

(२) स्थापनानन्त[१] - आरोपित या आनुषंगिक, या स्थापित अनन्त। यह भी यथार्थ अनन्त नही है। जहा किसी वस्तुमे अनन्तका आरोपण कर लिया जाता है वहा इन शब्दका प्रयोग किया जाता है।

(३) द्रव्यानन्त[२] ____ तत्काल उपयोगमे न आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस संज्ञाका उपयोग उन पुरुषोके लिये किया जाता है जिन्हे अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है, जिसका वर्तमानमे उपयोग नही है।

(४) गणनाननत__ संख्यात्मक अनन्त । यहसंज्ञा गणितशास्त्रमे प्रयूक्त वास्ताविक अनन्तकेअर्थमे आई है।

(५) अप्रदेशिकान्त परिणामहीन अर्थात अत्यन्त अल्प परमाणुरुप।

(६)एकानन्त__ एकदिशात्मक अनन्त। यह वह अनन्त है जो एक दिशामे सीधी एक रेखारुपसे देखनेमे प्रतीत होता है।

(७) विस्तारानन्त____ द्विविस्तारात्मक अथवा पृष्ठदेशीय अनन्त। असा अथ है प्रतरात्मक अनन्ताकाश।

(८) उभयानन्त__ द्विदिशात्मक अनन्त। इसका उदाहरण है एक सीधी रेखा जो दोनो दिशाओमे अनन्त तक जाती है

(९) सर्वानन्त __ आकाशात्मक अनन्त। इसका अर्थ है त्रिधा-विस्तृत अनन्त अर्थात घनाकार अनन्ताकाश।

(१०) भावानन्त__ तत्काल उपयोगमे आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस संज्ञाका उपयोग उस पुरुषके लिये किया जाता है जिसे अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है और जिसका उस ओर उपयोग है।

(११)शाश्वतान्न__ नित्यस्थायी या अनिवाशी अनन्त।

पूर्वोक्त वर्गीकरण खूब व्यापक है जिसमे उन सब अर्थोका समावेश हो गया है जिन अर्थोमे कि`अनन्त` संज्ञाका प्रयोग जैन साहित्यमे हुआ है।

१ ज त ठ्ठवणाणंत णाम त कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा---- अक्खो वा बराडयो वा जे च अण्णे ठ्ठवणाए ठ्ठविदा अणंतमिदि त सव्वं ठ्ठवणाणत णाम। ध.३, पृ.११ ते १२ . २. जं तं दव्वाणंतं त ंदुविहा आगमदो णोआगमदो य। ध.३, पृ १२.

गणनानन्त (Numerical infinite)

धवलामें यह स्पष्टरुपसे कह दिया गया है कि प्रकृतमे अनन्त संज्ञाका प्रयोग१ गणनानन्तके अर्थमें ही किया गया है, अन्य अनन्तोंके अर्थमें नहीं, ‘क्योंकि उन अन्य अनन्तोंके

द्वारा प्रमाणका प्ररुपण नहीं पाया जाता'२ ʿ यह भी कहा गया है कि 'गणनानन्त बहुवर्णनीय और सुगम है'३ ʿ इस कथनका अर्थ संभवत: यह है कि जैन-साहित्यमें अनन्त अर्थात् गणनानन्तकी परिभाषा अधिक विशदरुपसे भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा कर दी गई थी, तथा उसका प्रयोग और ज्ञान भी सुप्रचलित हो गया थाʿ किन्तु धवलामें अनन्तकी परिभाषा नही दी गईʿ तो भी अनन्तसंबंधी प्रक्रियाएं संख्यात और असंख्यात नामक प्रमाणोंके साथ साथ बहुत वार उल्लिखित हुई हैʿ

संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रमाणोंका उपयोग जैन साहित्यमें प्राचीनतम इ ाातकालसे किया गया हैʿ किन्तु प्रतीत होता है कि उनका अभिप्राय सदैव एकसा नहीं रहाʿ प्राचीनतर ग्रन्थोंमें अनन्त सचमूच अनन्तके उसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ था जिस अर्थमें हम अब उसकी परिभाषा करते हैं ʿ किन्तु पीछेके ग्रन्थोंमें उसका स्थान अनन्तानन्तने ले लिया ʿ उदाहरणार्थ-- नेमिचंद्र द्वारा दशवी शताब्दिमे लिखित ग्रन्थ त्रिलोकसारके अनुसार परीतानन्त, युक्तानन्त एवं जघन्य अनन्तानन्त एक बडी भारी संख्या है, किन्तु है वह सान्तʿ उस ग्रन्थके अनुसार संख्याओंकेतीन मूख्य भेद किये जा सकते हैं ---

(१) संख्यात--- जिसका संकेत्त हम स मान लेते हैंʿ

(२) असंख्यात--- जिसका संकेत्त हम अ मान लेते हैंʿ

(३) अनन्त--- जिसका संकेत्त हम न मान लेते हैंʿ

उपर्युक्त तीनों प्रकारके संख्या-प्रमाणोके पुन: तीन तीन प्रभेद किये गये हैं जो निम्न प्रकार है ---

(१) संख्यात --- (गणनीय) संख्याओंकेतीन भेद हैं---

(अ) जघन्य-संख्यात (अल्पतम संख्या) जिसका संकेत्त हम स ज मान लेते हैंʿ

(ब) मध्य-संख्यात (बीचकी संख्या) जिसका संकेत्त हम स म मान लेते हैंʿ

----

१ धवला ३, पृ. १६.

२ ‘ण च सेसअणंताणि पमाणपरुवणाणि, तत्थ तधादंसणादो’ॅ ध. ३, पृ. १७.

३ ‘जं तं गणणाणंतं तं बहुवण्णणीयं सुगमं च’ॅ ध. ३, पृ. १६.

(स) उत्कृष्ट संख्यात (सबसे बडी संख्या) जिसका संकेत्त हम स उ मान लेते हैंॅ

(२) असंख्यात (अगणनीय) केभी तीन भेद है ---

(अ) परीत-असंख्यात (प्रथम श्रेणीका असंख्य) जिसका संकेत्त हम अ प मान लेते हैंॅ

(ब) युक्त-असंख्यात (बीचका असंख्य) जिसका संकेत्त हम अ यु मान लेते हैंॅ

(स) असंख्यातासंख्यात (असंख्य-असंख्य) जिसका संकेत्त हम अ अ मान लेते हैंॅ

पूर्वोक्त इन तीनो भेदोमेसे प्रत्येकके पुन: तीन तीन प्रभेद होते हैंॅ जैसे, जघन्य (सबसे छोटा), मध्यम (बीचका) और उत्कृष्ट (सबसे बडा)ॅ इस प्रकार असंख्यातके भीतर निम्न संख्याएं प्रविष्ट हो जाती हैं ---

१ जघन्य-परीत-असंख्यात ------------ अ प ज

२ मध्यम-परीत-असंख्यात ------------ अ प म

३ उत्कृष्ट-परीत-असंख्यात ------------ अ प उ

१ जघन्य-युक्त-असंख्यात ------------ अ यु ज

२ मध्यम-युक्त-असंख्यात ------------ अ यु म

३ उत्कृष्ट-युक्त-असंख्यात ------------ अ यु उ

१ जघन्य-असंख्यातासंख्यात ------------ अ अ ज

२ मध्यम-असंख्यातासंख्यात ------------ अ अ म

३ उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात ----------- अ अ उ

(३) अनन्त --- जिसका संकेत्त हम न मान चुके हैं ँ उसके तीन भेद हैं---

(अ) परीत-अनन्त (प्रथम श्रेणीका सनन्त) जिसका संकेत्त हम न प मान लेने हैं ँ

(ब) युक्त-अनन्त (बीचका अनन्त) जिसका संकेत्त हम न यु मान लेते हैं ँ

(स) अनन्तानन्त (नि: सीम अनन्त) जिसका संकेत्त हम न न मान लेते हैं ँ

असंख्यातके समान इन तीनों भेदोंके भी प्रत्येक पुन: तीन तीन प्रभेद होते हैं ँ जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ँ अत: अनन्तके भेदोंके हमे निम्न संख्याएं प्राप्त होती हैं---

१	जघन्य-परीतानन्त	---------	न प ज
२	मध्यम-परीतानन्त	---------	न प म
३	उत्कृष्ट-परीतानन्त	---------	न प उ
१	जघन्य-युक्तानन्त	---------	न यु ज
२	मध्यम-युक्तानन्त	---------	न यु म
३	उत्कृष्ट-युक्तानन्त	---------	न यु उ
१	जघन्य-अनन्तानन्त	---------	न न ज
२	मध्यम-अनन्तानन्त	---------	न न म
३	उत्कृष्ट-अनतानन्त	---------	न न उ

संख्यातका संख्यात्मक परिमाण--- सभी जैन ग्रन्थोंके अनुसार जघन्य संख्यात २ है, क्योंकि, उन ग्रन्थोंके मतसे भिन्नताकी बोधक यही सबसे छोटी संख्या है ँ एकत्वको संख्यातमें सम्मिलित नहीं किया ँ मध्यम संख्यातमे २ और उत्कृष्ट संख्यातके बीचकी समस्त गणना आ जाती है, तथा उत्कृष्ट-संख्यात जघन्य-परीतासंख्यातसे पूर्ववर्ती अर्थात् एक कम गणनाका नाम है ँ अर्थात् स उ = अ प ज - १ ँ अ प ज को त्रिलोकसारमे निम्न प्रकारसे समझाया है१ ---

जैन भूगोलानुसार यह विश्व, अर्थात् मध्यलोक, भूमि और जलके क्रमवार वलयोंसे बना हुआ है ँ उनकी सीमाए उत्तरोत्तर बढती हुई त्रिज्याओंवाले समकेन्द्रीय वृत्तरुप हैं ँ किसी भी भूमि

या जलमय एक वलयका विस्तार उससे पूर्ववर्ती वलयके विस्तारसे दुगुना है ॅ केन्द्रवर्ती वृत्त (सबसे प्रथम बीचका वृत्त) एक लाख (१००,०००) योजन व्यासवाला है, और जम्बूद्वीप कहलाता है ॅ

अब बेलनके आकारके चार ऐसे गड्ढोंकी कल्पना कीजिये जो प्रत्येक एक लाख योजन व्यासवाले और एक हजार योजन गहरे हों ॅ इन्हें अ१, ब१, स१ और ड१ कहिये ॅ अब कल्पना कीजिये कि अ१ सरसोंके बीजोंसे पूरा भर दिया गया और फिर भी उस पर और सरसों डाले गये जब तक कि उसकी शिखा शंकुके आकारकी हो जाये, जिसमें सबसे ऊपर एक सरसोंका बीज रहे ॅ इस प्रक्रियाके लिये जितने सरसोंके बीजोंकी आवश्यकता होगी उनकी संख्या इस प्रकार है---

बेलनाकार गड्ढेके लिये __ १९७९१२०९२९९९६८.१० ३ १ ॅ ऊपर शंक्काकाकर शिखाके लिये - १७९९२००८४५४५१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ ॅ संपूर्ण सरसोका प्रमाण - १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६.

----

१ देखो त्रिलोकसार. गाथा ३५.

इस पूर्वोक्त प्रक्रियाको हम बेलनाकार गडढेका सरसोंके बीजोंसे ‘शिखायुक्त पूरण’ कहेंगे ॅ अब उपर्युक्त शिखायुक्त पूरित गड्ढेमेंसे उन बीजोंको निकालिये और जम्बूद्वीपसे प्रारंभ करके प्रत्येक द्वीप और समुद्रके वलयोंमे एक एक बीज डालिये ॅ चूंकि बीजोंकी संख्या सम है, इसलिये अन्तिम बीज समुद्रवलय पर पडेगा ॅ अब एक बीज ब१ नामक गड्ढेमें डाल दीजिये, यह बतलानेकेलिये कि उक्त प्रक्रिया एक बार हो गई ॅ

अब एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उस समुद्रकी सीमापर्यन्त व्यासके बराबर हो जिसमें वह अन्तिम सरसोंका बीज डाला हो ॅ इस बेलनको अ२ कहिये ॅ अब इस अ२ को भी पूर्वोक्त प्रकार सरसोंसे शिखायुक्त भर देनेकी कल्पना कीजिये ॅ फिर इन बीजोंको भी

पूर्व प्राप्त अन्तिम समुद्रवलयसे आगेंके द्वीप-समुद्ररुप वलयोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमश: एक एक बीज डालिये ` इस द्वितीय बार विरलनमें भी अन्तिम सरसो किसी समुद्रवलय पर ही पडेगा ` अब ब१ में एक और सरसो डाल दो, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया द्वितीय वार हो चुकी `

अब फिर एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसकाव्यास उसी अन्तिम प्राप्त समुद्रवलयके व्यासके बराबर हो तथा जो एक हजार योजन गहरा हो ` इस बेलनको अ३ कहिये ` अ३ को भी सरसोंसे शिखायुक्त भर देना चाहिये और फिर उन बीजोको आगेके द्वीपसमुद्रोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे एक एक डालना चाहिये ` अन्तमें एक ओर सरसों ब१ में डाल देना चाहिये `

कल्पना कीजिये कि यही प्रक्रिया तब तक चालू रखी गई जब तक कि ब१ शिखायुक्त न भर जाये ` इस प्रक्रियामें हमें उत्तरोत्तर बढते हुए आकारके बेलन लेने पडेंगे ___

अ१, अ२,................   अर,...................

मान लिजिये कि ब१ शिखायुक्त भरने पर अन्तिम बेलन अ' प्राप्त हुआ `

अब अ' को प्रथम शिखायुक्त भरा गड्ढा मान कर उस जलवलयके बादसे जिसमें पिछली क्रियाके अनुसार अन्तिम बीज डाला गया था, प्रारम्भ करके प्रत्येक जल और स्थलके वलयमें एक एक बीज छोडने की क्रियाको आगे बढाइये ` तब स १मे एक बीज छोडिये ` इस प्रक्रियाको तब तक चालू रखिये जब तक कि स१ शिखायुक्त न भर जाय ` मान लीजिये कि इस प्रक्रियासे हमें अन्तिम बेलन अ" प्राप्त हुआ ` तब फिर इस अ" से वही प्रक्रिया प्रारम्भ कर दीजिये और उसे ड१ के शिखायुक्त भर जाने तक चालू रखिये ` मान लिजिये कि इस प्रक्रियाके अन्तमें हमें अ"' प्राप्त हुआ ` अतएव जघन्यपरीतासंख्यात अ प ज का प्रमाण अ"' में समानेवाले सरसों बीजोंकी संख्याके बराबर होगा और उत्कृष्ट संख्यात = स उ = अ प ज - १

पर्यालोचन --- संख्याओंको तीन भेदोंमें विभक्त करनेका मुख्य अभिप्राय यह प्रतीत होता है - संख्यात अर्थात् गणना कहाँ तक की जा सकती है यह भाषामें संख्या-नामोंकी उपलब्धि अथवा संख्याव्यक्तिके अन्य उपायोंकी प्राप्ति पर अवलम्बित है ˆ अतएव भाषामें गणनाका क्षेत्र बढानेके लिये भारतवर्षमें प्रधानत: दश-मानके आधारपर संख्या-नामोंकी एक लम्बी श्रेणी बनाई गईˆ हिन्दू १०१७ तककी गणनाको भाषामें व्यक्त कर सकनेवाले अठारह नामोंसे संतुष्ट हो गयेˆ १०१७ से ऊपरकी संख्याएं उन्हीं नामोंकी पुनरावृत्ति द्वारा व्यक्त की जा सकती थी, जैसे कि अब हम दश-लाख (million millon) अदि कह कर करते हैं किन्तु इस बातका अनुभव हो गया कि यह पुनरावृत्ति भारभूत (cumbersome) हैˆ बौद्धों और जैनियोंको अपने दर्शन और विश्वरचना संबंधी विचारोंके लिये १०१७ से बहुत बडी संख्याओंकी आवश्यकता पडीˆ अतएव उन्होंने और बडी बडी संख्याओंके नाम कल्पित कर लियेˆ जैनियोंके संख्यानामोंका तो अब हमें पता नहीं हैं१ किन्तु बौद्धोंद्वारा कल्पित संख्या-

----

१ जैनियोंके प्राचीन साहित्यमे दीर्घ काल प्रमाणोंके सूचक नामोंकी तालिका पाई जाती है जो एक वर्ष प्रमाणसे प्रारम्भ होती हैˆ यह नामावली इस प्रकार है ---

१ वर्ष			१७ अटटांग	=	८४ त्रुटित
२ युग	=	५ वर्ष	१८ अटट	=	,, लाख अटटांग
३ पूर्वांग	=	८४ लाख वर्ष	१९ अममांग	=	,, अटट
४ पूर्व	=	,, लाख पूर्वांग	२० अमम	=	,, लाख अममांग
५ नयुतांग	=	,, पूर्व	२१ हाहांग	=	,, अमम
६ नयुत	=	,, लाख नयुतांग	२२ हाहा	=	,, लाख हाहांग
७ कुमुदांग	=	,, नयुत	२३ हूहांग	=	,, हाहा
८ कुमुद	=	,, लाख कुमुदांग	२४ हूहू	=	,, लाख हूहांग

९ पद्मांग	= ,, कुमुद		२५ लतांग	=	,, हूहू
१० पद्म	= ,, लाख पद्मांग		२६ लता	=	,, लाख लतांग
११ नलिनांग	= ,, पद्म		२७ महालतांग	=	,, लता
१२ नलिन	= ,, लाख नलिनांग		२८ महालता	=	,, लाख महालतांग
१३ कमलांग	= ,, नलिन		२९ श्रीकल्प	=	,, लाख महालता
१४ कमल	= ,, लाख कमलांग		३० हस्तप्रहेलित	=	,, लाख श्रीकल्प
१५ त्रुटितांग	= ,, कमल		३१ अचलप्र	=	,, लाख हस्तप्रहेलित
१६ त्रुटित	= ,, लाख त्रुटितांग				

यह नामावली त्रिलाकप्रज्ञप्ति (४--६ वीं शताब्दि) हरिवंशपुराण (८ वी शताब्दि) और राजवार्तिक (८ वी शताब्दि) में कुछ नामभेदोंके साथ पाई जाती है ॆ त्रिलोकप्रज्ञप्तिके एक उल्लेखानुसार अचलप्रका प्रमाण ८४ को ३१ वार परस्पर गुणा करनेसे प्राप्त होता है- अचलप्र-८४३१ तथा संख्या ९० अंक प्रमाण होगी ॆ किन्तु लघुरिक्थ तालिका (Logarithmic tables) केअनुसार ८४३१ संख्या ६० अंक प्रमाण ही प्राप्त होती है ॆ देखिये धवला, भाग ३, प्रस्तावना व फुट नोट, पृ. ३४ --- सम्पादक.

नामोकी निम्न श्रेणिका चित्ताकर्षक है ---

१ एक	= १		१५ अब्बुद	= (१०,०००,०००)८
२ दस	= १०		१६ निरब्बुद	= (१०,०००,०००)९
३ सत	= १००		१७ अहह	= (१०,०००,०००)१०
४ सहस्स	= १,०००		१८ अबब	= (१०,०००,०००)११

५ दससहस्स = १०,०००

६ सतसहस्स = १००,०००

७ दससतसहस्स= १,०००,०००

८ कोटि = १०,०००,०००

९ पकोटी = (१०,०००,०००)२

१० कोटिप्पकोटि =(१०,०००,०००)३

११ नहुत = (१०,०००,०००)४

१२ निन्नहुत = (१०,०००,०००)५

१३ अखोभिनी = (१०,०००,०००)६

१४ बिन्दु = (१०,०००,०००)७

१९ अटट = (१०,०००,०००)१२

२० सोगन्धिक = (१०,०००,०००)१३

२१ उप्पल = (१०,०००,०००)१४

२२ कुमुद = (१०,०००,०००)१५

२३ पुंडरीक = (१०,०००,०००)१६

२४ पदुम = (१०,०००,०००)१७

२५ कथान = (१०,०००,०००)१८

२६ महाकथान = (१०,०००,०००)१९

२७ असंख्येय = (१०,०००,०००)२०

यहाँ देखा जाता है कि श्रेणिकामें अन्तिम नाम असंख्येय है॑ इसका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि असंख्येयके ऊपरकी संख्याएं गणनातीत है॑

असंख्येयका परिणाम समय समय पर अवश्य बदलता रहा होगा॑ नेमिचंद्रका असंख्यात उपर्युक्त असंख्येयसे, जितका प्रमाण १०१४० होता है, निश्चयत: भिन्न है॑

असंख्यात --- ऊपर कहा जा चुका है कि असंख्यातके तीन मुख्य भेद हैं और उनमेंसे भी प्रत्येकके तीन भेद हैं; ऊपर निर्दिष्ट संकेतोंके प्रयोग करनेसे हमें नेमिचंद्रके अनुसार निम्न प्रमाण प्राप्त होते हैं ---

जघन्य-परीत-असंख्यात (अ प ज) = स उ + १

मध्यम-परीत-असंख्यात (अ प म) है > अ प ज, किन्तु < अ प उ.

उत्कृष्ट-परीत-असंख्यात (अ प उ) = अ यु ज - १

जहाँ ---

जघन्य-युक्त-असंख्यात (अ यु ज) = (अ प ज) अ प ज

मध्यम- युक्त-असंख्यात (अ यु म) है > अ यु ज, किन्तु < अ यु उ.

उत्कृष्ट-युक्त-असंख्यात (अ यु ज = अ अ ज - १)

जहाँ ---

जघन्य-असंख्यातासंख्यात (अ अ ज) = (अ यु ज)२

मध्यम-असंख्यातासंख्यात (अ अ म) है > अ अ ज, किन्तु < अ अ उ

उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात (अ अ उ) = न प ज - १)

जहाँ ---

न प ज जघन्य-परीत-अनन्तका बोधक है

अनन्त --- अनन्त श्रेणीकी संख्याए निम्न प्रकार है ---

(अअज)

(अअज) (अअज)

(अअज) (अअज)

(अअज) (अअज)

क = (अअज)

मानलो ख = क + छह द्रव्य१

$(\text{खख})^{\text{खख}}$

मानलो ग = $(\text{खख})^{\text{खख}}$ + ४ राशिया२

तब ---

$(\text{गग})^{\text{गग}}$

जघन्य-परीत-अनन्त (न प ज) = $(\text{गग})^{\text{गग}}$

मध्यम-परीत-अनन्त (न प म) है > न प ज, किंतु < न प उ

उत्कृष्ट-परीत-अनन्न (न प उ = न यु ज - १,

----

१ छह द्रव्य ये हैं - (१) धर्म, (२) अधर्म, (३) एक जीव, (४) लोकाकाश, (५) अप्रतिष्ठित (वनस्पति जीव), और (६) प्रतिष्ठित (वनस्पति जीव).

२. चार समुदाय ये हैं - (१) एक कल्पकालके समय, (२) लोककाशके प्रदेश, (३) अनुभागबंधअध्यवसायस्थान, और (४) योगकेअविभाग-प्रतिच्छेद.

जहाँ ---

(अ प ज)

जघन्य युक्त-अनन्ज (न यु ज) = (अ प ज)

मध्यम-युक्त-अनन्त (न यु म) है > न यु ज, किंतु < न यु उ

उत्कृष्ट-युक्त-अनन्त (न यु उ)= न न ज - १

जहाँ ---

जघन्य-अनन्तानन्त (न न ज) = $(\text{न यु ज})^{2}$

मध्यम-अनन्तानन्त (न न म) > है न न ज, किंतु < न न उ

जहाँ ---

न न उ उत्कृष्ट अनन्तानन्तके लिये प्रयुक्त है, जो कि नेमिचंन्द्रकेअनुसार निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है ---

क्ष = [ननज्र ननज्र] [ननज्र ननज]

(ननज) (ननज) (ननज) (ननज) + छह राशिया १

त्र = क्षक्ष क्षक्ष

(क्षक्ष) (क्षक्ष) + दो राशियां[2]

ज्ञ = ʿ वत्र ʿ त्रत्र

(त्रत्र) (त्रत्र)

अब, केव्रलज्ञान राशि ज्ञ से भी बडी है और ---

न न उ = केव्रलज्ञान - ज्ञ + = केव्रलज्ञान,

पर्यालोचन --- उपर्युक्त विवरणका यह विष्कर्ष निकलता है ---

(१) जघन्य-परीत-अनन्त (न प ज) अनन्त नहीं होता जब तक उसमें प्रक्षिप्त किये गये छह द्रव्यों या चार राशियोंमेंसे एक अधिक अनन्त न मान लिये जाये ʿ

----

१. छह राशिया ये हैं - (१) सिद्ध, (२) साधारण वनस्पति निगोद, (३) वनस्पति, (४) पुन्द्गल (५) व्यवहारकाल और (६) अलोकाकाश.

२. ये दो राशिया हैं - (१) धर्मद्रव्य, (२) अधर्मद्रव्य, (इन दोनोंके अगुरुलघु गुणके अविभाग-प्रतिच्छेद)

----

(२) उत्कृष्ट-अनन्त-अनन्त (न न नउ) केव्रलज्ञानराशिके समप्रमाण है ʿ उपर्युक्त विवरणसे यह अभिप्राय निकलता हैं कि उत्कृष्ट अनन्तानन्त अंकगणितकी किसी प्रक्रियाद्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, चाहे वह प्रक्रिया कितनी ही दूर क्यों न ले जायी जाये ʿ यथार्थत: वह अंकगणितद्वारा प्राप्त ज्ञ की किसी भी संख्यासे अधिक ही रहेगा ʿ अत: मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केव्रलज्ञान अनन्त है और इसीलिये उत्कृष्ट -अनन्तानन्त भी अनन्त है ʿ

इस प्रकार त्रिलोकसारान्तर्गत विवरण हमें कुछ संशयमें ही छोड देता है कि परीतानन्त और युक्तानन्तके तीन तीन प्रकार तथा जघन्य अनन्तानन्त सचमुच अनन्त है या नही, क्योंकि ये सब असंख्यातके ही गुणनफल कहे गये हैं, और जो राशियां उनमें जोडी गई हैं वे भी

असंख्यातमात्र ही हैंˆ किन्तु धवलाका अनन्त सचमुच अनन्त ही है, क्योंकि यहाँ यह स्पष्टत: कह दिया गया है कि ‘व्यय होनेसे जो राशि नष्ट हो वह अनन्त नहीं कही जा सकती’[1]ˆ धवलामें यह भी कह दिया गया है कि अनन्तानन्तसे सर्वत्र तात्पर्य मध्यम-अनन्तानन्तसे हैˆ अत: धवलानुसार मध्यम-अनन्तानन्त अनन्त ही हैˆ धवलामें उल्लिखित दो राशियोके मिलानकी निम्न रीति बडी रोचक है२---

एक ओर गतकालकी समस्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी अर्थात् कल्पकालके समयोंको (time-instants) स्थापित करोˆ (इनमे अनादि-सान्तत्व होनेसे अनन्तत्व है हीˆ) दूसरी और मिथ्यादृष्टी जीवराशि रखोˆ अब दोनों राशियोंमेंसे एक एक रूप बराबर उठा-उठा कर फेकते जाओˆ इस प्रकार करते जानेसे कालराशि नष्ट हो जाती है, किन्तु, जीवराशिका अपहार नहीं होता३ˆ धवलामें इस प्रकारसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मिथ्यादृष्टी राशि अतीत कल्पोंके समयोंसे अधिक हैˆ

यह उपर्युक्त रीति और कुछ नहीं केवल एकसे-एककी संगति (one-to-one correspondence) का प्रकार है जो आधुनिक अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinals) का मूलाधार हैˆ यह कहा जा सकता है कि वह रीति परिमित गणनांकोके मिलानमें भी उपयुक्त होती है, और इसीलिये उसका आलम्बन दो बडी परिमित राशियोंसे मिलानके लिये लिया गया था- इतनी बडी राशियां जिनके अंगो (elements) की गणना किसी संख्यात्मक संज्ञा द्वारा नहीं की जा सकीˆ यह दृष्टीकोण इस बातसे और

----

१. ‘संते वए णट्टंतस्स अणंतत्तविरोहादो’ˆ ध. ३, पृ. २५.

२. धवला ३, पृ. २८.

३. ‘अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण’ˆ ध. ३, पृ. २८ सूत्र ३ देखो टीका पृ. २८ ‘कधं कालेण मिणिज्जंते मिच्छाइट्ठी जीवा’? आदिˆ

भी पुष्ट होता है कि जैन-ग्रन्थोंमें समयके अध्वानका भी निश्चय कर दिया गया है, और इसलिये एक कल्प (अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी) के कालप्रदेश परिमित ही होना चाहिये, क्योंकि, कल्प स्वयं कोई अनन्त कालमान नहीं है। इस अन्तिम मतके अनुसार जघन्य-परीत-अनन्त, जो कि परिभाषानुसार कल्पके कालप्रदेशोंकी राशिसे अधिक है, परिमित ही है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एकसे-एककी संगतिकी रीति अनन्त गणनांकोंके अध्ययनके लिये सबसे प्रबल साधन सिद्ध हुई है, और उस सिद्धान्तके अन्त्रेषण तथा सर्व-प्रथम प्रयोगका श्रेय जैनियोंको ही है।

संख्याओंके उपर्युक्त वर्गीकरणमें मुझे अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्तको विकसित करनेका प्राथमिक प्रयत्न दिखाई देता है। किन्तु इस सिद्धान्तमें कुछ गंभीर दोष हैं। ये दोष विरोध उत्पन्न करेंगे। इनमेंसे एक स- १ की संख्याकी कल्पनाका है, जहाँ स अनन्त है और एक वर्गकी सीमाका नियामक है। इसके विपरीत जैनियोंका यह सिद्धान्त कि एक संख्या स का वर्गित-संवर्गित रुप अर्थात् $स^{स}$ एक नवीन संख्या उत्पन्न कर देता है, युक्तपूर्ण है। यदि यह सच हो कि प्राचीन जैन साहित्यका उत्कृष्ट-असंख्यात अनन्तसे मेल खाता है, तो अनन्तकी संख्याओंकी उत्पत्तिमें आधुनिक अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinals) का कुछ सीमा तक पूर्वनिरुपण हो गया है। गणितशास्त्रीय विकासके उतने प्राचीन काल और उस प्रारम्भिक स्थितिमें इस प्रकारके किसी भी प्रयत्नकी असफलता अवश्यंभावी थी। आश्चर्य तो यह है कि ऐसा प्रयत्न किया था।

अनन्तके अनेक प्रकारोंकी सत्ताको जार्ज केन्टरने उन्नीसवीं शताब्दिके मध्यकालके लगभग प्रयोग-सिद्ध करके दिखाया था। उन्होंने सीमातीत (transfinite) संख्याओंका सिद्धांत स्थापित किया। अनन्त राशियोंके क्षेत्र (domain) के विषयमें कैन्टरके अन्वेषणोंसे गणितशास्त्रके लिये एक पुष्ट आधार, खोजनेके लिये एक प्रबल साधन और गणितसंबंधी अत्यन्त गूढ विचारोंको ठीक रुपसे व्यक्त करनेके लिये एक भाषा मिल गई है। तो भी यह सीमातीत संख्याओंका सिद्धांत अभी अपनी प्राथमिक अवस्थामें ही है। अभी तक इन संख्याओंका कलन (calculus) प्राप्त नहीं हो

पाया है, और इसलिये हम उन्हें अभी तक प्रबलतासे गणितशास्त्रीय विश्लेषणमें नहीं उतार सके हैं[९]

शब्द-सूची

'धवलाका गणितशास्त्र' शीर्षकं लेखमें जो गणितसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष हिन्दी शब्दोंका उपयोग किया गया है उनके समरुप अग्रेजी शब्द निम्न प्रकार हैं ---

अनन्त - Infinite.

अनन्त गणनांक सिद्धान्त - Theory of infinite cardinals

अनुताप - Proportion.

अर्धक्रम - Operation of mediation.

अर्धच्छेद - Number of times a number is halved; mediation; Logarithm.

असंख्यात - Innumerable.

असाम्यता - Inequality.

अंक - Notational place.

अंकगणित - Arithmetic.

अंग -Element

घनमूल - Cube root

घात निकालना, °करना - Raising of numbers to given powers.

घातांक - Powers.

घातांक सिद्धान्त - Theory of indices.

चतुर्थच्छेद - Number of times that a number can be divided by 4.

चिन्ह - Trace.

जोड - Addition.

ज्योतिषविद्या - Astronomy.

टिप्पणी - Notes.

त्रिकच्छेद - Number of times that a number

आधार - Base (of logarithm)

can be divided by 3.

आविष्कार - Discovery; invention.

उत्तरोत्तर - Successive

एकदिशात्मक - One directional.

एकसे एकंकी सगति _ One-to-one correspondence

कला - Art.

कालप्रदेश - Time-instant.

कुट्टक - Indeterminte equation

केन्द्रवर्ती वृत्त - Initial circle;central Core.

क्रिया - Operation.

क्षेत्रप्रदेश - Locations; points or Places.

क्षेत्रमिति - Mensuration.

गणित, °शास्त्र - Mathematics.

गणितज्ञ - Mathematician.

गुणा - Multiplication.

पूर्णांक - Integer.

प्रक्रिया - process; operation.

प्रतरात्मक अनन्त आकाश - Infinite Plane area.

प्रश्न - problem.

प्राथमिक - Elementary; primitive.

त्रिज्या - Radius.

त्रैराशिक - Rule of three.

दशमान - Scale of ten.

दाशमिकक्रम - Decimal place-value notation.

द्विगुणक्रम - Operation of duplation.

द्विविस्तारात्मक - Two-dimensional; superficial

निगूढतर्क- Abstract reasoning.

नियम - Rule.

पद्धति - Method.

परिणाम - Result.

परिमाण - Magnitude.

परिमाणहीन - Dimensionless.

परिमित गणनांक - Finite cardinals.

विज्ञान - Science.

विद्युत्कण - protons and electrons.

विनिमय - Barter and exchange.

विरलन - Distribution; spreading.

विरलन-देय - Spread and give.

बाकी - Subtraction.

बीजगणित - Algebra.

बेलनाकार - Cylindrical.

भाग - Division

भाजक - Divisor.

भिन्न - fraction.

मूल, °मौलिक प्रक्रिया - Fundamental Operation.

राशि - Aggregate.

रुढ संख्या - prime.

रुपरेखा - General outline.

लघुरिक्थ - Logarithm.

लब्ध - Quotient.

वर्ग - Square.

वर्गमूल - Square root.

वर्गशलाका-Logarithm of logarithm.

वर्गसमीकरण - Quadratic equation.

वर्गित-संवर्गित - Raising a number to its own power (संख्यातुल्य घात)

वलय - Ring.

विकलन - Distribution.

विश्लेषण - Analysis.

विस्तार - Details.

वृत्त - Circle.

व्याज - Interest.

व्यास - Diameter.

शंक्वाकार शिखा - Super incumbent cone.

शाखा - School.

श्रेणीबद्ध करना - Classify.

समकेन्द्रीय - Concentric.

सरल समीकरण - Simple equation.

संकेत्त - Symbol, notation.

संकेत्तक्रम - Scale of notation.

संख्या - Number.

संख्यात - Numberable.

संख्यातुल्य घात - Raising of a number to its own power.

सातत्य - Continuum.

साधारणीकृत - Generalised.

सीमा - Boundary.

सीमातीत संख्या - Transfinite number.

सूत्र - Formula.
